© Eureka Journals 2022. All Rights Reserved. International Peer Reviewed Referred Journal

Shodh International: A Multidisciplinary International Journal (In Hindi)
https://www.eurekajournals.com/shodh.html
ISSN: 2581-3501

चैतन्य-केन्द्र ध्यान द्वारा अतीन्द्रिय क्षमताओं का विकास

Dr. Ashok Bhaskar[1], Dr. Nirmala[2]

[1]Jain Vishwa Bharati Institute, Ladnun.
[2]Asstt. Professor, Himalayan Garhwal University, Uttrakhand.

परामनोविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत पुनर्जन्म, अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय शक्ति आदि परासामान्य विषयों के अनुसंधान के क्रमिक विकास का अध्ययन किया जाता है।

प्रो. इस्ट्रीक,[1] सीजर डी वेस्मी,[2] रेने सुद्री[3] व एरिक यिंगवाल[4] आदि द्वारा लिखित पुस्तकों में वर्णित आदिम, प्राचीन व आधुनिक समाजों में भूतावेश संबंधी विभिन्न घटनाओं के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि देशकाल की भिन्नताओं के बावजूद इनमें मूलत बहुत-सी समानताएँ भी हैं। सांस्कृतिक परिवेश में भिन्नता होने के कारण विभिन्न समाजों में इनकी व्याख्याएँ भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई हैं।

परामनोविज्ञान के मुख्यत चार अंग हैं:

1. दूरबोध,
2. परचितबोध,
3. मनोमिति,
4. पूर्वाभास।

परासामान्य या अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण परामनोविज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। योग-साधना के विविध प्रयोगों का अभ्यास करके व्यक्ति अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न बन सकता है। योगशास्त्र के ज्ञाता आचार्यों ने अलौकिक क्षमताओं को जागृत करके जिन विधि-विधानों का आविष्कार किया था, आज के भौतिक विज्ञानी भी उसकी पुष्टि अपने ढंग से कर रहे हैं।

सामान्यत बाह्य जगत् का बोध हमें अपनी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से ही होता है। किन्तु जब किसी भी मनःप्रभाव अथवा भौतिक वस्तु या घटना का बोध हमें बिना किसी इन्द्रिय संवेदन अथवा तार्किक अनुमान से हो तो उसे अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण (एक्स्ट्रा सैंसरी परसैप्शन) कहा जा सकता है। क्योंकि अभी तक इस प्रकार के बोध की कोई सामान्य व्याख्या किसी भी विज्ञान द्वारा संभव नहीं हो पाई है।

© Eureka Journals 2022. All Rights Reserved. International Peer Reviewed Referred Journal

अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण को 'परासामान्य' की श्रेणी में रखकर इसका परामनोविज्ञान में विस्तृत व गहन अध्ययन करने का प्रयास किया जा रहा है।

अतीन्द्रिय ज्ञान की उपलब्धि चैतन्य-केन्द्रों से

चैतन्य केन्द्र क्या है?

जो दृश्य है, वह स्थूल शरीर है। इसके भीतर तैजस और कर्म-ये दो सूक्ष्म शरीर हैं। उनके भीतर आत्मा है। वह चैतन्यमय है। जैसे सूर्य और हमारे बीच में बादल आ जाते हैं, वैसे ही आत्मा के चैतन्य और बाह्य जगत् के बीच में कर्म-शरीर के बादल छाए हुए हैं। इसीलिए चैतन्य-सूर्य का पूर्ण प्रकाश बाह्य जगत् पर नहीं पड़ता। बादलों के होने पर भी सूर्य का प्रकाश पूरा ढक नहीं जाता।

वैसे ही कर्म-शरीर का आवरण होने पर भी चैतन्य पूरा आवृत्त नहीं होता। उसकी कुछ रश्मियां बाह्य जगत् को प्रकाशित करती रहती हैं। मनुष्य अपने प्रयत्न से कर्म शरीरगत ज्ञानावरण को जैसे-जैसे विलीन करता है, वैसे-वैसे चैतन्य की रश्मियां अधिक प्रस्फुटित होने लगती हैं। कर्म-शरीरगत ज्ञानावरण की क्षमता जितनी विलीन होती है, उतने ही स्थूल शरीर में प्रज्ञान की अभिव्यक्ति के केन्द्र निर्मित हो जाते हैं। ये ही हमारे चैतन्य-केन्द्र हैं।[5] प्रेक्षाध्यान में निम्न चैतन्य केन्द्रों का उल्लेख है-

1. शक्ति केन्द्र
2. स्वास्थ्य केन्द्र
3. तैजस केन्द्र
4. आनन्द केन्द्र
5. विशुद्धि केन्द्र
6. ब्रह्म केन्द्र
7. प्राण केन्द्र
8. अप्रमाद केन्द्र
9. चाक्षुष केन्द्र
10. दर्शन केन्द्र
11. ज्योति केन्द्र
12. शांति केन्द्र
13. ज्ञान केन्द्र

© Eureka Journals 2022. All Rights Reserved. International Peer Reviewed Referred Journal

विद्युत् चुम्बकीय क्षेत्र

जैन पराविद्या के अनुसार शक्ति और चैतन्य के केन्द्र अनगिनित हैं। वे पूरे शरीर में फैले हुएहैं। उन्हें ग्रंथियों तक सीमित नहीं किया जा सकता। ग्रंथियों का काम सूक्ष्मतर या कर्मशरीर से आने वाले कर्म-रसायनों और स्रावों का प्रभाव प्रदर्शित करना है। अतीन्द्रिय चेतना को प्रकट करना उनका मुख्य कार्य नहीं है। वे अतीन्द्रिय चेतना की अभिव्यक्ति के लिए विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र बन सकते हैं अथवा उनके आस-पास का क्षेत्र विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र बन सकता है। उनके अतिरिक्त शरीर के और भी अनेक भाग विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र बन सकते हैं; इसलिए शक्ति-केन्द्रों और चैतन्य-केन्द्रों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। हमारी कोख के नीचे बहुत शक्तिशाली चैतन्य-केन्द्र हैं। हमारे कंधे बहुत बड़े शक्ति-केन्द्र हैं। फलित की भाषा में कहा जा सकता है कि शक्ति-केन्द्र और चैतन्य-केन्द्र शरीर के अवयव नहीं हैं किन्तु शरीर के वे भाग हैं, जिनमें विद्युत्-चुम्बकीय-क्षेत्र बनने की क्षमता है। वे भाग नाभिसे नीचे पैर की एड़ी तक तथा नाभि से ऊपर सिर की चोटी तक, आगे भी हैं, पीछे भी हैं, दाएँ भी हैं और बाएँ भी हैं। जब समस्त ऋजुता आदि विशिष्ट गुणों की साधना के द्वारा वे केन्द्र सक्रिय हो जाते हैं, 'करण' बन जाते हैं, तब उनमें अतीन्द्रिय चेतना प्रकट होने लग जाती है। यह कोई आकस्मिक संयोग नहीं है। यह एक स्थाई विकास है। एक बार चैतन्य-केन्द्र के सक्रिय हो जाने पर जीवन भर उसकी सक्रियता बनी रहती है। अतीन्द्रिय-ज्ञानी जब चाहे तब अपनी अतीन्द्रिय चेतना का करण भूत चैतन्य-केन्द्र के द्वारा उपयेग कर सकता है। वह सूक्ष्म, व्यवहित और दूरस्थ पदार्थ का साक्षात् कर सकता है।

अतीन्द्रिय ज्ञान की जागृति का एक माध्यम है-प्रेक्षाध्यान।

प्रेक्षाध्यान की प्रक्रिया

प्रेक्षाध्यान की दो पद्धतियाँ हैं:

1. सम्पूर्ण शरीर-प्रेक्षा,
2. चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा।

सम्पूर्ण शरीर की प्रेक्षा करने से पूरा शरीर 'करण' बन जाता है, अतीन्द्रिय-ज्ञान का साधन बन जाता है। इसमें दीर्घकाल, गहन अध्यवसाय, सघन श्रद्धा और धृति की अपेक्षा होती है। कुछ महीनों और वर्षों की प्रेक्षा-साधना से पूरा शरीर 'करण' नहीं बन जाता। उसके लिए बहुतबड़ा अभ्यास जरूरी होता है। इसकी अपेक्षा किसी एक चैतन्य-केन्द्र की प्रेक्षा का अभ्यास कुछ सरल होता है। पूरे शरीर की प्रेक्षा का परिपाक होने पर पूरे शरीर से अतीन्द्रियज्ञान की प्रकाश-रश्मियाँ बाहर फैलती हैं। चैतन्य-केन्द्र की

© Eureka Journals 2022. All Rights Reserved. International Peer Reviewed Referred Journal

प्रेक्षा से जो चैतन्य-केन्द्र जागृत होता है, उसी से अतीन्द्रियज्ञान की प्रकाश-रश्मियां बाहर फैलती हैं। अतीन्द्रियज्ञान की दोनों प्रकार की उपलब्धियां ध्यान के दो भिन्न कोटिक-अभ्यासों पर निर्भर हैं। जिस व्यक्ति की जैसी श्रद्धा, रुचि, शक्ति और धृति होती है, वह उसी पद्धति का चुनाव कर लेता है- कोई सम्पूर्ण शरीर प्रेक्षा का और कोई चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा का।

प्रेक्षाध्यान की निष्पत्ति

प्रेक्षाध्यान से दो कार्य निष्पन्न होते हैं:

1. करण-निष्पत्ति,
2. आवरण-विशुद्धि।

जहां अवधान नियोजित होता है, वह शरीर-भाग अवधिज्ञान के लिए 'करण' या माध्यम बन जाता है। प्रेक्षाध्यान का अवधान राग-द्वेष-रहित, समभावपूर्ण होता है, उससे ज्ञान और दर्शन का आवरण विशुद्ध होता है। आवरण के विशुद्ध होने पर जानने की क्षमता बढ़ती है और शरीर-भाग के विशुद्ध होने पर उस विकसित ज्ञान को शरीर से बाहर फैलने का अवसर मिलता है। आवरण की विशुद्धि सम्पूर्ण चैतन्य में होती है, किन्तु उसका प्रकाश शरीर-प्रदेशों को करण बनाए बिना बाहर नहीं जा सकता। विद्युत्-प्रवाह होने पर भी यदि बल्ब न हो तो उसका प्रकाश नहीं होता। ठीक यही बात ज्ञान पर लागू होती है। आवरण की विशुद्धि होने पर चैतन्य का प्रवाह उपलब्ध हो जाता है, फिर भी शरीर-प्रदेश की विशुद्धि हुए बिना वह बाह्य अर्थ को नहीं जान सकता, प्रकाशित नहीं कर सकता। इसलिए ज्ञान के क्षेत्र में आवरण-विशुद्धि और करण-विशुद्धि-ये दोनों आवश्यक होती हैं।

केन्द्र और संवादी केन्द्र

चैतन्य-केन्द्र हमारे स्थूल शरीर में होते हैं। नाभि, हृदय, कंठ, नासाग्र, भृकुटि, तालु, सिर-ये चैतन्य-केन्द्र हैं। आवरण की विशुद्धि होने पर ये जागृत हो जाते हैं, निर्मल हो जाते हैं और अतीन्द्रिय ज्ञान की अभिव्यक्ति के माध्यम बन जाते हैं। ज्ञात चैतन्य-केन्द्रों के अतिरिक्त स्थूल शरीर के ऐसे अन्य परमाणुस्कंधभी हैं, जो अतीन्द्रिय ज्ञान के माध्यम बनते हैं। परिष्कृत या निर्मल बने हुए परमाणु-स्कंधों को स्थूल शरीर में देखा नहीं जा सकता। इसीलिए इन चैतन्य-केन्द्रों के विषय में विचार-भिन्नता मिलती है। कुछ लोग इनकी उपस्थिति प्राण-शरीर में मानते हैं और कुछ वासना-शरीर में। ये उन दोनों में हो सकते हैं, किन्तु प्राण और वासना-शरीर में होने वाले केन्द्रों के संवादी केन्द्र यदि स्थूल शरीर में न हों तो ज्ञान को अभिव्यक्ति नहीं मिल सकती। इन्द्रियज्ञान के केन्द्र सूक्ष्म शरीर में होते हैं और उनके संवादी केन्द्र हमारे स्थूल शरीर में होते हैं, तभी भीतर की ज्ञान-रश्मियां बाह्य जगत् में आती हैं। इन चैतन्य-केन्द्रों पर भी यही नियम लागू होता है।

© Eureka Journals 2022. All Rights Reserved. International Peer Reviewed Referred Journal

जो चैतन्य-केन्द्र नाभिसे ऊपर के भाग में होते हैं, वे विशद होते हैं। कुछ चैतन्य-केन्द्र नीचे भी होते हैं, वे अविशद होते हैं; इसलिए आध्यात्मिक उत्क्रमण करने वालों के वे नहीं होते।[6]

भावतंत्र का परिष्कार

अग्रमस्तिष्क (फ्रंटल लॉब) कषाय या विषमता का केन्द्र है। अतीन्द्रिय चेतना का केन्द्र भी वही है। जैसे-जैसे विषमता समता में रूपान्तरित होती है, वैसे-वैसे अतीन्द्रिय चेतना विकसित होती चली जाती है। उसका सामान्य बिन्दु प्रत्येक प्राणी में विकसित होता है। उसका विशिष्ट विकास समता के विकास के साथ ही होता है। मनुष्य के आवेगों और आवेशों पर हाइपोथेलेमस का नियंत्रण है। उससे पिनियल और पिच्यूटरी ग्लैण्ड्स प्रभावित होते हैं। उनका स्राव एड्रीनल ग्लैण्ड को प्रभावित करता है। वहां आवेश प्रकट होते हैं। ये आवेग अतीन्द्रिय चेतना को निष्क्रिय बना देते हैं। उसकी सक्रियता के लिए हाइपोथेलेमस और पूरे ग्रंथि-तंत्र को प्रभावित करना आवश्यक होता है। ग्रंथि-तंत्र का संबंध मनुष्य के भाव-पक्ष से है। भावपक्ष का सृजन इस स्थूल-शरीर से नहीं होता। उसका सृजन सूक्ष्म और सूक्ष्मतर शरीर से होता है। सूक्ष्म शरीर से आने वाले प्रतिबिम्ब और प्रकंपन हाइपोथेलेमस के द्वारा ग्रंथितंत्र में उतरते हैं। जैसा भाव होता है, वैसा ही ग्रंथियों का स्राव होता है और स्राव के अनुरूप ही मनुष्य का व्यवहार और आचरण बनता है। यह कहने में कोई जटिलता नहीं लगती कि मनुष्य के व्यवहार और आचरण का नियंत्रण ग्रंथितंत्र करता है और ग्रंथि-तंत्र का नियंत्रण हाइपोथेलेमस के माध्यम से भावतंत्र करता है और भावतंत्र सूक्ष्म-शरीर के स्तर पर सूक्ष्म-चेतना के साथ जन्म लेता है। स्मृति, कल्पना और चिन्तन की पवित्रता से भावतंत्र प्रभावित होता है और उससे ग्रंथितंत्र का स्राव बदल जाता है। उस रासायनिक परिवर्तन के साथ मनुष्य का व्यवहार और आचरण भी बदल जाता है। यह परिवर्तन मनुष्य की अतीन्द्रिय चेतना को सक्रिय बनाने में बहु तसहयोग करता है।[7]

संदर्भ ग्रन्थ

1. 'डाई वेसेसनटीट', लेंगेनसेल्जा, वेण्ट, 1921.
2. 'ल हिस्टॉरि ड्यू स्पीरिच्युअलिज्म एक्सपेरीमेण्टल, पेरिस, 1928.
3. 'परसोनेजेस ड्या-डेला', पेरिस, 1946.
4. 'घोस्ट्स एण्ड स्पिरिट्स इन एनशिएन्ट वर्ल्ड', लन्दन, 1930.
5. जैन दर्शन और विज्ञान, पृ. 113-114.
6. जैन दर्शन और विज्ञान, पृ. 117-119.
7. वही, 125-126.